

आज के संदर्भ में गांधी

लेखक

बदरी नारायण सिनहा

संपादक

डाक्टर बेचन

गांधी शतवार्षिकी के उपलक्ष में प्रकाशित

मार्च, १९६९]

[मूल्य ३० पैसे मात्र

वेब प्रकाशन: दीपावली हैदराबाद २३ अक्टूबर २०१४]

[वेब साइट: bnsinhaips.org

वेब प्रकाशक : अधर सिन्हा

आज के संदर्भ में गांधी

सौ वर्ष हो रहे हैं जब मोहनदास करमचंद गाँधी का इस लोक में अवतरण हुआ था। तब ब्रिटिश सत्ता की सार्वभौमिकता स्थापित हुये कुल ग्यारह वर्ष बीते थे और कांग्रेस का अभ्युदय भी सोलह वर्ष बाद ही होनेवाला था। हाँ, धड़ल्ले से एक बात घटित हो रही थी : भारतीय अधिकारों के मलवे पर नये-नये कानून स्तूपकार जमते जा रहे थे। और जिस दिन अर्थात् ३० जनवरी, १९४८ को उस व्यक्ति की शहादत हुई, उस दिन ब्रिटिश सत्ता खत्म हो चुकी थी, कांग्रेस का कायाकल्प कल्पनाधीन ही नहीं रूप-रेखांकित भी हो चुका था और मलवे पर संविधान निर्मित होने जा रहा था।

२- गांधी के देहावसान और स्वतंत्रता की लब्धि दोनों की आयु एक-सी ही है। जो सन् १९४७-४८ में जन्मे थे, वे आज वयस्क तथा मताधिकार-संपन्न हो गये हैं। पर जो स्वतंत्रता उस घड़ी अभिराम लगी थी, बच्चों के लिये एक सुखद कथा, तरूणों के लिये चुनौती, प्रौढ़ों के लिये दायित्व, वृद्धों के लिये ठोस भविष्य की आस्था, वह अब बहुलांश में उन सबों के लिये क्रमशः अस्पष्ट झलक, बोझ, दबाव तथा पश्चात्ताप लगने लगी है। यह परिवर्तन उतने ही दिनों की देन है जितने दिनों में एक शिशु पल और बढ़ कर बालिग तथा कर्तव्याधिकारी नागरिक बन जाता है। अब तो दो आवाजें स्पष्टतः सुन पड़ने भी लगी हैं; जो सत्ता गई वह इस सत्ता से भली थी और जनतंत्र से काम-धाम नहीं चलेगा। पर प्रारंभ में ही यह कह देना ही नहीं अपितु समझ लेना समीचीन होगा कि दोनों आवाजें घबड़ाहट में पैदा हुई हैं, सच्ची पुकार नहीं हैं और खोखली हैं।

३- निराशावादी की नाई हम यह कहें कि पात्र में जो पानी है, वह इसके आधे भाग में ही है वरन् यह कहें कि पात्र में हमें लबालब पानी भरना है। इन इक्कीस वर्षों में हमने बहुत कुछ किये, राज्य का भव्य ढाँचा खड़ा किया, बहुतेरी प्रथाएँ, जो बहुजनों के लिये चुभन दमन थीं, खत्म की, शिक्षा-सेवाओं को उन्मुक्त किया, अनेक सेतुबंध बनाये और कई सदियों बाद जरा अकड़ कर चलना भी सीखा।

४- यह सदी जो बीत रही है वह ऐसी है जिसमें अब बहुत सारी मान्यताएँ रह नहीं गई हैं, बहुत-सी मूर्तियाँ ढह गई हैं, और सबसे बड़ी-मूर्ति ईश्वरीय मूर्ति भी क्षत-विक्षत हो गई है जिसकी प्रतिद्वंद्विता में विज्ञान खड़ा हो आया है। प्रश्न ईश्वर-रूपी कल्पना बनाम विज्ञान-रूपी कल्पना का नहीं है, आध्यात्म बनाम भौतिक आयाम का भी नहीं है। वरन् प्रतिमान बनाम प्रतिमान-हीनता का है। जो लक्ष्य हमें जीवन-पथ पर गतिवान कराये, जो ध्येय हमें जीवंत करे, जिस प्रतिमान के अनुरूप हम अपने को, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंततः विश्व को ढालें, वही मनुष्य की संस्कृति है, वही क्रियाओं का उत्स है, वही, मैं कहूँगा, ईश्वर है। और इसे अंतिम वाक्य समझ लें कि बिना किसी प्रतिमान के, दृष्टि के, "ईश्वर" के न कोई मानव, न कोई समाज, न कोई राष्ट्र जी या बढ़ सकता है।

५- भारतीय संस्कृति परम्परा और दर्शन को अपने में पूर्णतः प्रतीकित करते हुए गांधी विकसित हुए थे। इसे समझने के लिये भारतीय इतिहास के सभी मूल अध्यायों को सहेजना होगा। और हम ऐसा अवश्य करें। हमारी अटल धारणा है कि एक परम सत्ता है जो अनादि है, अनंत है पर वह सभी प्राणी में विद्यमान है और प्राणी में ही नहीं, अणु-अणु में, कण-कण में वह एक तेज है जिसकी अग्नि-सी ज्वलंत कणिका सबों में रहती है और इसलिये वसुधा ही कुटुम्ब-समान है और चूंकि वह सत्ता समदर्शी है, अन्याय हरण करती है, दया बरसाती है, इसलिये विवेक-लब्धि के कारण प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी मानव को भी ऐसा ही बनना है रहना है। इसी धारणा से उद्भूत हमारे यहां राजन कठोरव्रती हुआ करते थे, ईश्वरीय अवतार भी, सत्य, न्याय के प्रतिपालक, अनीति के नाशक, निजी ऐश्वर्य तथा सुख के त्यागी। गांधी का राम-राज्य इसी तथ्य पर आधारित था, उनका अछूतोद्धार इसी समदर्शिता का प्रतिफलन था, उनका सत्याग्रह अनीति के प्रति वैसा ही अनवरत युद्ध था, उनका श्री-आडंबर-विहीन जीवन-यापन इसी त्याग का मानवी रूप था।

६- विश्व में बढ़ती हुई सामरिक शक्ति तथा अनीश्वरवादिता और मूल्यहीनता के परिप्रेक्ष्य में भारत की स्थितियों का अवलोकन आवश्यक है। और इसलिये आवश्यक है कि हमारे पास अब समय नहीं है, बिल्कुल ही नहीं है। अपनी संस्कृति के नुकीले दाँतों पर विदेशी पालिश की पायरिया हावी हो गई है। देश में जो हजार, लाख, करोड़ बच्चे पैदा हो रहे हैं वे आँख आकाश की ओर और पेट पश्चिम की ओर किए जी रहे हैं और जो मांग-चांग कर मिलता है उस पर सब वैसे ही टूट पड़ते हैं जैसे स्टेशनों की जूठी पत्तलों पर भिखमंगो, कुत्ते और चील एक साथ। सरहद पर बेशुमार टिड्डी दल आ गये हैं और इसकी हरीतिमा चुगते जा रहे हैं। उत्तर में हिम श्रृंखला रौंद पड़ी है। पश्चिम से ज्वार का आना अबतक रूखा भी नहीं है। विद्यालयों का अभाव है। जो है उन पर छत नहीं जिन पर छत है, उन में सत् नहीं। जिन में सत् है, उन में लोग कार्यरत नहीं। अपनी पोटियों में दीमक लग गई है, बहुतेरे पराक्रमियों में क्षेत्रियता, स्वार्थपरता, वाणि संकीर्णता, प्रांतरीयता, द्वेष, कलह के अश्व छोड़ डाले हैं और ये अश्व धरित्री को रौंद रहे हैं।

७- और इन सबसे भी जो भयंकर प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है और जिसके परिमार्जन, निराकरण तथा निष्कासन निमित्त गांधी ने अपना शरीर आहुति में दे डाला वह बाह्य तथा आंतरिक जीवन के पार्थक्य में गोचर होती है अर्थात् मुँह से तो आदर्श की व्याख्या पर क्रिया में बिल्कुल विपरीत। गांधी ने जीवन भर जो कहा वह किया, जो किया वह कहा। हरिजनों के बीच प्रेम दिखलाने कहा तो खुद आवास भी वहाँ किया। अन्यों ने आजतक ऐसा कहाँ किया? जवाहरलाल ने देश, विदेश 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा भारतीय मानवतावाद की व्याख्या की, इसके द्वारा कुछ अधिक इज्जत भी हासिल की परन्तु उन्होंने इसके सम्यक प्रसारण हेतु भारतवर्ष में ही एक कदम भी नहीं उठाया। इसी प्रकार और ठीक ही हमने सामन्तशाही तो खत्म कर दी कलम की एक नोंक से और शांतिपुर्ण भी, अहिंसाव्रत के अनुरूप पर हमने सिर्फ एक ढाँचा ही तोड़ डाला, उसकी जो मूल जडता थी उसे विनष्ट नहीं किया। और जहाँ एक हजार सामान्तों की दुनिया हमने मिटा दी, जो मिटाना भी जरूरी था चूंकि अधिकांशतः दमन और शोषण पर वह दुनिया टिकी थी, वहाँ सामन्तशाही को हमने अपने जीवन में, दैनंदिनी में, व्यवस्था में, क्रियाकलाप, आलाप में कबूल कर लिया है। आज राजा, महाराजा गैर-कानूनी करार कर दिये गये हैं, परन्तु राजाओं, महाराजाओं

जैसे जनमानस से कहीं जिन्दगी बसर करनेवाले लाखों नर-नारियां पैदा हो गये हैं, चूंकि बात साफ-साफ कहनी है, साहस के साथ, बिना भय के इसलिये कहना जरूरी है कि आज कोई भी प्रभावशाली नागरिक देश में कहीं भी ऐसी जिन्दगी बसर नहीं कर रहा है जो जन-मानस से जुटी हो, उनमें घुली-मिली हो। जिसे भी अवसर मिल गया है वह स्वयं या उसकी संपत्ति भी बाहर तो जहाँ सादे, परोपकारी और सेवाश्रित जीवन की दुहाई देता है वहाँ अपने कक्ष में, आंतरिक व्यवहार में उनसे घृणा करता है जिनके लिए वह मंच पर आँसू बहाता है, चिंघाड़ता है, कलेजा पीटता है। सब मौके की ताक में रहते हैं - राजा से प्रासाद बनाने को, तिजोरी भरने को, ऐय्याशी करने को, जगह-बेजगह उड़ने को, थिरकने को, समाज में रूतबा हासिल करने को, भीड़-भाड़ में प्रभुत्व बिखेरने को। नगर में घूम जायें, डगर पर चलें जायें, नये-नये राज्य और उन राज्यों के नये-नये सम्राट नहीं तो राजन् दीख पड़ेंगे। स्मरण रहे, इनके ही अनेक मुहजोर अश्व छूटे हुये हैं और धरित्री को रौंद रहे हैं। सुख संपन्न जीवन व्यतीत करना कतई बुरा नहीं पर काले द्रव्य पर, ऐंठी हुई राशि पर और फरेब से इकट्ठे किये गये धन पर सामन्तशाही बरतना वैसा ही है जैसा किसान से अन्न छीनकर मजदूर से उसका पेट काटकर जीना था या है। यह कि अर्थ ही स्वोपरि है, हमारा दर्शन कभी नहीं रहा, इसके साथ-साथ धर्म, काम, मोह भी जुटे रहे हैं, और अर्थ की लब्धि भी एक सीमा तक मान्य रही है। फिर भी तो इसका त्याग या परहित में विलयन ही अभीष्ट रहा है। आज अर्थ के लिये विश्व में क्या हो रहा है, दुहराना आवश्यक नहीं। गांधी के नियोजन में जो कुछ आर्थिक सीमाएँ दीखती हैं, उनकी जड़ गूढ़ है, सत् ही नहीं, उनका निदान हम मनुष्य की वृत्तियों के परिमार्जन में भी देख सकते हैं। गांधी को ईश्वरीय सत्ता में प्रतीति थी, इसलिये उस सत्ता के अनुरूप ही उन्होंने मानव को परखा था और उसके हितार्थ सारी व्यवस्थाएँ दी थीं।

८- अनीश्वरवादित को आधारशिला बनाकर और वैज्ञानिक उत्कर्ष से मतवाले भौतिकवाद या राजतंत्रवाद ने जो दुनिया आरोपित की, फिर निर्मित भी, उसमें मानवीय क्षुधाएँ मूलतः अतृप्त ही रह गई हैं, सिर्फ पेट की क्षुधा को छोड़ कर अन्य सभी क्षुधाएँ हाहाकार कर ही रही हैं, सम्राट जैसे नायकों ने अपने को लाखों की हड्डियों पर सुरक्षित और बरकरार रखा ही है, दुर्बल को बलवान ने निगल डाला ही है, संघर्ष और उत्पीडन होते ही रहे हैं, मुट्ठी भर लोगों को राजाओं की मात्राओं में सुख-ऐश्वर्य सुलभ हो रहे ही हैं और मोटी रोटी फेंककर अपार जन-समूह को छोड़ दिया गया ही है और उस मोटी रोटी के बदले सोचने, बोलने और उन्मुक्त विचारने के हक छीन लिये गये हैं। यह नहीं कि जहाँ वह दृष्टिकोण नहीं, वहाँ असहायों की बोटी नहीं नोची जाती है, रोटी के लिये भयंकर यातना सहनी नहीं पड़ती, व्यक्तित्व की पंखुड़ियाँ अविकसित नहीं रहतीं पर मानस एक कठघरे में बंद नहीं रहता और उन्मुक्त वातावरण या अभावग्रस्त नहीं होता है। पर गांधी-दर्शन में मोटी रोटी और वैयक्तिक स्वातंत्र्य दोनों की क्षमताएँ हैं। इसमें मानवीय वृत्तियों के परिमार्जित तथा संयत स्थिति की पृष्ठभूमि में परिकल्पना है कि सभी क्रियाएँ घटित होती हैं।

९- आज के ऐहिक तथा मानसिक विकास, कल्याण तथा अन्य किसी उन्नयन में वैज्ञानिक उपलब्धियों को हम ठुकरा नहीं सकते, जैसा करना प्रवंचन तुल्य होगा। विज्ञान सत्य-स्थापना ही है, कल्याण को सुगम करने में बड़ा ही श्रेयस्कर। इसी प्रकार राजनीति को भी मुट्ठी भर पुरुषों के हवाले कर हम आज उन्नयन नहीं हो सकते हैं। आज तो सक्रिय योगदान की अपेक्षा सबों से है,

श्रमिक से लेकर कवि तक से। कारण आज राजनीति बड़ी व्यापक हो चली है। उतनी ही जितनी व्यापक पहले धार्मिक या ऐच्छिक या सामाजिक व्यवस्थाएँ होती थीं और जिनके माध्यम से मानव-कल्याणा संपादित होते थे। अर्थात् बुद्ध ने महज आचार-संहिता के माध्यम से जो विशाल जन-जागृति की, कबीर, तुलसी आदि ने कवितावलियों के सहारे जो चेतना उद्घोषित की थी या उन्नीसवीं सदी में राममोहन राय आदि ने रूढ़ियों का जो विनाश एक कोरे समाज-सुधारक की हैसियत से किया था, वे आज एकोन्मुखी संस्था, संगठन या दृष्टि द्वारा संभव नहीं, चूँकि राजनीति ने ही अपने दायरे में मानव को पूर्णतः लील लिया है। गांधी ने भी जागृति लाई परन्तु उनका मंच राजनैतिक था। अनेक बातों से उद्वेलित एवं प्रेरित राज्य-व्यवस्थाओं में अब एक सम्य आ गया है, वह यह कि सिर्फ सुरक्षा प्रदान करना ही इनका कर्तव्य नहीं है बल्कि परिवार, समाज, देश की प्रायः सभी समस्याओं का समाधान करना भी इनका दायित्व है। इसलिये, राजनीति से न तो हम तटस्थ, न विमुख रह सकते हैं।

१०- गांधी ने सम्पूर्ण मानव की परिकल्पना की थी और अपने को भी सम्पूर्ण मानव के रूप में उतारा था। वह एकोन्मुखी नहीं थे, वे त्यागी बनकर हिमालय की गुफ़ा में नहीं चले गये, वे सत्याग्रही तथा विद्रोही बनकर अहम की भट्टी में दिन-रात धधकनेवाले न बन गये, वे राम की भक्ति कर समाधि में लीन नहीं हो गये। वे योगी थे और इसलिए, इन्द्रिय विजेता, क्रियावान तथा ज्ञानी। और आज भारत की ही नहीं विश्व की सारी समस्याएँ निदान पा सकती हैं यदि हम समाज को सर्वांगीण व्यक्तियों के एक समूह में ढालें, खंडित व्यक्तियों के दल के रूप में नहीं। इसी सदी में दुर्भाग्यवश खंडित व्यक्तियों की ही विशेष उपज एवं खपत हुई है। कोई व्यक्ति यदि धर्म में रत है, तो वह विज्ञान से विमुख है, कोई विज्ञान में विलक्षण है तो वह काव्य, साहित्य से कोसों दूर है, कोई यदि कवि है तो वह भौतिकवादी नहीं, कोई राजनीतिज्ञ है तो, वह धर्म से चिढता है, आदर्श से भागता है, कोई सुधारक है तो वह जीवन की सुकुमारिताओं को पहचान नहीं पाता है। ऐसे खंडित व्यक्तियों को लेकर न कोई राष्ट्र, न समाज, न विश्व सुखी बन सकता है न आत्मतुष्ट, इसलिये, आज अनेक थातियों को समेटकर सर्वांगीण मनुष्यों के निर्माण में योगदान करना है और खुद सर्वांगीण बनना भी है।

११- भारत की वर्तमान दुरवस्थाओं का सारा दोष हम राजनीतिज्ञों के ऊपर लाद देते हैं। जहाँ वर्तमान प्रणाली में बहुत से दायित्व इनके कंधों पर है, वहाँ तक यह दोषारोपण निस्सार भी नहीं। पर सभी वर्गों के दायित्वों का इससे लेखा-जोखा नहीं होता है। सरकारी सेवा में, सेना में, विद्यालयों में भी बड़े ही देशभक्त, मौलिक चिंतक हैं जिनका संपर्क जन-जीवन से प्रगाढ़ ही नहीं अपितु निश्चल, निकट एवं वास्तविक रहता है। गांधी ने केवल बहुमत से प्राणित राजतंत्र की ही दुहाई नहीं दी थी, उन्होंने सर्वमत से अनुशासित तंत्र की हामी भरी थी। आज के संदर्भ में शासन को बंद कठघरे (केबिनेट) या बहसागर (पार्लमेंट) से निकालकर सर्व-परिधिमय करना होगा। यह विचारणीय है कि पश्चिमी राजनीति द्वारा स्थापित मान्यता में अब पूरा सार रह गया है कि नहीं कि सरकारी यंत्र में लगे व्यक्तियों की जुबान पर ताले लगे रहें और वे मूक रहें, निर्धारित समय पर मतदान द्वारा शासन के चयन में योगदान भर देकर जायें। और सिर्फ वे ही नहीं, बल्कि वे भी जो ओहदेदार नहीं हैं, यानी जो समुद्र से मछली पकड़ते हैं, खेतों में हल चलाते हैं, मशीन के कलपुर्जे

जारी रखते हैं, जो विद्यालयों, मकतबों में बच्चों, बच्चियों को क,ख, ग, गणित सिखलाते हैं, जो सरहद पर अस्त्र-शस्त्र से लैश होकर अपनी जमीन की रखवाली करते हैं, जो दूध गारकर दूसरों की पसलियाँ मजबूत करते हैं। आज जो जनता में दर्द है, वह इस मान्यता का ही प्रतिफल है, चिड़ियों के खेत चुग जाने की बाद की स्थिति है। गांधी ने सतर्कता जो बरती थी, दर्शायी थी, वह चौबीस घंटों वाली रतर्क थी, पाँच वर्ष बाद जगने वाली सतर्कता नहीं थी, हाथ मारकर रह जानेवाली सतर्कता नहीं थी। उस जागरूकता को सबों में उभारना है। अब प्रत्येक जीवन-मरण संबंधी शासन-निर्णय पर जन-जन की मुहर लगवानी पड़ेगी और उस जन-जन में सिर्फ राजनीतिक अगुए या कार्यकर्ता ही नहीं होंगे, किसान, मजदूर, किरानी, ओहदेधारी, वयस्क, वयस्का। ड्राइंग रूम में नुक्कड़ों पर, चौराहों पर, बंद कमरों में वार्तालाप करना, प्रसंग छेड़ना, आलोचना करना निरर्थक है। ईमानदारों को बाहर आना है। गांधी ने क्रियात्मक राजनीति की थी, निष्क्रिय नहीं, जूझा था, होड़ ली थी, प्रताड़ना सही थी, आज वैसी ही शक्ति प्राप्त करनी होगी। जो श्रमजीवी हैं, जो बुद्धिजीवी हैं, जो आध्यात्मवादी हैं, जो योगी हैं, जो गृहस्थ हैं, उन्हें समस्याओं में निमग्न होकर अमृत निकालना होगा। जिस प्रकार वायु बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता है, उसी प्रकार ऐसे जागरूक, सतत विद्यमान जन-प्रहरियों के बिना कोई शासन अब प्रियमाण होने से बच नहीं सकता है, और इक्के-दुक्के लोगों को अपने कल्याण का बिर्बा सुपुर्द कर हम सो नहीं सकते हैं, मूक और चुप्पी साधकर रह नहीं सकते हैं। ऐसा किसी भी धर्म, न्याय, तंत्र, गांधीवाद के किसी अवयव के अंतर्गत मान्य नहीं। आज का नारा यह होना चाहिए - न अन्याय करें या सोंचे तक ही और न अन्याय का सहन करें। अंग्रेजी में इसे कहेंगे: ब्रुक नो इबिल, डू नो इबिल, टेस्त नो इबिल।

१२- आज धर्म और राजनीति में बड़ा ही कृत्रिम भेद कर दिया गया है। यह बिलगाव एक फैशन-सा भी हो गया है। यह ठीक है, धर्म के नाम पर युद्ध हुए हैं, बहुत-सी लोमहर्षक घटानाएँ हुई हैं पर इसके लिए जिम्मेदार वे हैं जो धूर्त हैं, दुमानिये हैं। इस भेदभाव का सबसे बुरा असर मनुष्य के आचरण पर पड़ा है। जबकि धर्म केवल आचरण का ही पर्याय या जीवन की शाश्वत निर्मल एवं निश्चल क्रिया का बोध होता है। राजनीति में असत्य, फरेब, द्वेष, दलबंदी, स्वार्थसिद्धि का कोई स्थान नहीं है। इसलिये राजनीति को धर्मनीति से जोड़ना पड़ेगा क्योंकि मनुष्य की क्रियाएँ एक ही लक्ष्य की ओर सम्मुख होती हैं, उस घड़ी वह अपने स्वार्थ का बलिदान करता है साथ ही अपने भविष्य को सुरक्षित और परिवार, समाज, देश, विश्व के सामूहिक कल्याण को संभव भी। धर्म इससे विलग नहीं। धर्म से केवल सदाचरण का बोध होगा, किसी संप्रदाय का नहीं और ऐसे धर्म के लिये राजनीतिज्ञ भी प्रचार करेंगे, कटिबद्ध रहेंगे और जो धर्म का अधर्म करते हैं, उन्हें राजनीति में प्रश्रय न मिलेगा और जो राजनीति में नीतियों की अवहेलना करते हैं, उन्हें धर्म को आड़ से निकाल देना होगा, उनके करों से धर्म की वेदियाँ छू जायेंगी। गांधी की प्रार्थना-सभा का यही रहस्य था। और धर्म की जब ऐसी व्याकप प्रतिष्ठा हो जायेगी, तब एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों पर हो रहे और संभाव्य प्रहार, घुसपैठी, फरेब से सत्ता की उलट-फेर, सत्ता का हस्तांतरण आदि जितने भी खतरे हैं। उनका भी विनाश हो जायेगा। गांधी की राजनीति में धर्म एक ऐसा ही तेज तत्व है - और रहा था।

१३- जनतंत्र या कोई भी राजतंत्र, चरित्रवान, अच्छे नागरिकों के बिना सफल नहीं हो सकता है। गांधी ने ऐसे ही जागरूक, नीतिसंपन्न नागरिकों के अस्तित्व की कल्पना की थी, इसलिये उन्होंने अपने ही जैसे हजार ही नहीं, लाख-लाख संस्करण देश के कोने-कोने में निकाल डाले, जो वेश-भूषा, व्यवहार, क्रिया, संभाषण, जीवन-यापन में उनके ही ऐसे थे, जिनमें से कुछ तो अभी गोचर भी हैं। लोगों ने अपनी समृद्धि तज दी, प्रताड़ना सही, कुंदों, कारा, गोली को सहर्ष स्वीकार किया। अपने रोजमर्रे तक बदल डाला। फिर ऐसा नेतृत्व ही कहाँ? टेलीविजन, जेट, ध्वनि-प्रसारण के युग में क्यों नहीं लोगों ने अपने ऐसे संस्मरण निकाल डाले? इसलिये कि इनमें सर्वांगीण क्षमताएँ नहीं थीं।

१४- गांधी के सत्याग्रह की उपयोगिता अभी खत्म नहीं हुई है, वह सत्याग्रह विदेशी शासन के प्रति ही नहीं वरन् मनुष्य की सारी अनीतियों के प्रति अपेक्षित था और आज भी जीवंत है। इसके प्रयोग से आज समाज में फैली हुई विषमताएँ काफूर हो जा सकती हैं। चोरों, बटमारों, घूसखोरों, ऐय्याशों, मधहोशों और गंबनकारियों का बहिष्कार, सामाजिक बहिष्कार एक न्यायोचित विधान होगा। इनसे छूत मानने होंगे। इनसे वैवाहिक संबंध नहीं करने होंगे, इनके यहाँ खान-पान नहीं होगा, इन्हें इनके सामने इनकी दुर्बलता बतला देनी होगी। सामाजिक संबंध संस्कार के अनुसार रखना होगा। समाज का एक बड़ा ही कठोर, निर्मम ढंग होगा और तब भले ही शासन का यंत्र ढीला रहे, समाज में अन्याय का पौधा कभी लहलहायेगा नहीं, कुरीतियों का फल कभी लगेगा नहीं, अशांति की लहर कभी दौड़ेगी नहीं। आज ऐसा नहीं हो रहा है। जिन्होंने गलत ढंग से अपार राशि इकट्ठी कर ली है, उनके यहाँ ही सब दस्तक लगाते हैं, उनसे बल प्राप्त करते हैं। इसमें बड़ी कठोरता बरतनी होगी, सगे कुटुम्बों में यदि यह दुर्बलता रहेगी, उनके यहाँ भी वही बहिष्कार रूपी सत्याग्रह प्रयुक्त होगा।

१५- आज नेतृत्व की मांग की जा रही है, नेतृत्व से चमत्कार उत्पन्न होते हैं, नेतृत्व पथ-प्रदर्शन कर गिरते को सँभालना है, गतिवंत को प्रगति-पथ पर खींचना है और सुप्त धमनियों में अग्नि खौलना है। पर नेतृत्व कोई महापुरुष ही करे, यह जरूरी नहीं। प्रत्येक व्यक्ति नेतृत्व कर सकता है, इसके लिये न कोई विशाल संस्था न कोई बड़ा जनसमुदाय अपेक्षित है। हर मनुष्य अपने दायरे में रहकर अज्ञानी को ज्ञान, भटके को राह, विद्यासक्त को विरक्ति, विचलित को शक्ति, जर्जर तप्त को संजीवन प्रदान कर सकता है। आज ऐसे ही नेतृत्व की जरूरत है, झंडा-पताका लेकर, शोर मचाकर जनपथ पर टोली को अग्रसर करने वाले जैसे व्यक्तियों के नेतृत्व की वैसी जरूरत रह भी नहीं गई। सच्चा नेतृत्व परिवार में, विद्यालय में, व्यवसाय में, सामाजिक क्रियाओं में निरखना चाहिये चूंकि नेतृत्व केवल मंच पर ही नहीं निखरता है। शिक्षक जब शिक्षार्थियों को तन्मयता से सीख देता है, दफ्तर में लिपिक और अधिकारी द्वारा ईमानदारी से कार्य संपन्न होता है, व्यापारी मिलावट नहीं करता है, संतरी सजग प्रहरी रहता है, किसान अन्न नहीं चुराता है तब वह अपना कर्तव्य तो निभाता ही है साथ-साथ समाज की नींव सुदृढ़ करता है और अंततः नेतृत्व भी करता है। और जो उपर्युक्त कर्तव्यों से जी चुराता है, गुमराह रहता है, उसे सत्याग्रह द्वारा कर्तव्यनिष्ठ किया जा सकता है। आज नेतृत्व की यही सच्ची सीख देनी है।

१६- भारत के एक सशक्त क्षेत्र में भी क्रांति लानि है। यह क्षेत्र ऐसा है जिसकी हर क्रिया की प्रतिक्रिया समाज पर पड़ती है। यह सरकारी सेवा का क्षेत्र है। यह बुद्धिजीवियों का क्षेत्र है, मेधावी, पूर्ण शिक्षित व्यक्तियों का क्षेत्र है। इसमें वह समझ जगानी है कि उनकी कलम की हर दौड़ में देश की दौड़, हर क्रिया में राष्ट्र की प्रगति निहित है और अभी जो सरकारी सेवा सामन्तशाही, अर्थ-आदर-लब्धि का पर्याप्त समझी जाती है उसका सही रूप यह बतलाना होगा कि यह व्रत राजव्रत है, इसमें मद की कोई गुंजाइश नहीं, इससे सबका मंगल अभीष्ट है, शोषण नहीं, यह वैसा ही व्रत है जैसा भारतीय परम्परा में राजाओं द्वारा ग्रहण किया और पाला जाता था। सरकारी सेवकगण गृह त्यागी नहीं होंगे, उनकी सुख-सुविधा बरकरार रहेगी पर बंद दायरे में रहने की प्रवृत्ति का त्याग, सादा, आडंबर-हीन जीवन व्यतीत करना होगा, फरियाद सुनने के लिये उनका द्वार सदा खुला रहेगा और अनेक चक्रव्यूहों को तोड़कर या पारकर न तो उनके जाने का व्यवधान होगा न विधान। गांधी ने ऐसे ही राज-व्रत की ओर निर्दिष्ट किया था और यह हकीकत है कि यह व्रत अभी पूरा करना बाकी है।

१७- गांधी ने स्वदेशीपन के नारे बुलन्द किये थे, स्वदेश की ही बनी, भले कच्ची, अधपक्की वस्तुओं के प्रयोगार्थ आंदोलन किया था, उससे उनका विश्वबंधुत्व निर्बल नहीं पड़ा था, उससे उनके देश का इतिहास, देश का पौरुष जाग गया था, आत्महीनता लुप्त नहीं हो गई थी, खण्डहरों पर दीप जल उठे थे, सुप्तों ने अंगड़ाइयाँ ली थीं। आज इस आंदोलन को पुनः जागरित करना है, उसी हठ के साथ जिस हठ से यह आया था। इसे वेश-भूषा, रहन-सहन, आचार-विचार, आदान-प्रदान में उतारना होगा। इसे भाषा के प्रांगण में जीवंत करना होगा। विदेशी भाषा ज्ञान का माध्यम हो सकती है, सभ्यता और संस्कृति की दायिनी नहीं। दुर्भाग्यवश विदेशी भाषा ज्ञान का वातायन जितना नहीं खोल पाती है उतना दम्भ, आडम्बर, सुसंस्कृति के झूठे दावे स्वांग रचा है। यह नकाब उतारना ही होगा। यह कम चिंता की बात नहीं कि विगत इक्कीस वर्षों में हमारी शिक्षा-पद्धतियाँ तथा जीवन-प्रणालियाँ पश्चिमी अवतरणों से आच्छन्न हो गई हैं।

१८- रास्ते साफ हैं: एक अपने इतिहास, अपनी संस्कृति से बना है जिसमें प्राणी-प्राणी में समता है, ब्रह्म की इकाई है और परिवार, समाज के प्रति वीर निष्ठा और कर्तव्य-परायणता है, आदर्श की जीवंत स्थिति है, नारी से पातिव्रत्य कि माँग है और नारी के प्रति माँ, भागिनी का आदर है, और दूसरा वह है जो पश्चिम में उनकी आयु, उनके इतिहास तथा दृष्टिकोण से बना है जिसमें भी क्षमताएँ हैं जरूर पर जो हमारी वृत्तियों के अनुकूल नहीं है। पर स्वदेशीपन का अर्थ वह न होगा जो नाजियों ने सर्वश्रेष्ठता बोध से विक्षिप्त होकर दर्शाया था। स्वदेशीपन का अर्थ अपनी इकाई को बचाये रखने से होगा, अपनी आत्मा को विनष्ट न होने देने से होगा। भारतवर्ष पर इतिहास, ज्ञात, इतिहास को ही सही, जितने थपेड़े पड़े हैं, विदेशी दमन से आक्रान्त जितनी लम्बी अवधि रही है, उन सबको सहेजने पर जिस लौ को अक्षुण्ण पाया जाता है वही लौ उसकी आत्मा दीखती है, वही तेज उसके प्रारूप के रूप में स्पष्ट होता है, वही प्राण उसकी अमरता साबित होता है। आज इसी लौ को प्रखर करना होगा। वह लौ मृगतृष्णा, मद, आडम्बर, कृत्रिम व्यवहार में दबेगी नहीं, यह सत्य है पर इससे तनिक भी ओझल न हो, वह आज प्रयासनीय होगा। गांधी के व्यक्तित्व की यह अमिट छाप सुरक्षित रखनी होगी। पश्चिम ने ईश्वरीय प्रतिमान को ढाह दिया है,

इसके बदले जो प्रतिमान खड़ा किया है वह कुछ वर्षों में ही अपूर्ण साबित हो चुका है। अपना प्रतिमान रखना ही होगा। समाज की व्यवस्था बिना किसी प्रतिमान के ढह जायेगी, जहाँ-तहाँ ढह भी गई है, बिखर गई है, इसलिये आज गांधी जैसे जीवंत प्रतीक को अपनाने में ही हमारा कल्याण है।

१९- एक प्रश्न बच जाता है। मनुष्य किस माध्यम से आदर्श को कार्यान्वित करे? अनेक मंच हैं, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक। जिसको जिस मंच में रूचि हो वह उसी मंच का अनुसरण करे, शर्त एक ही निभानी होगी, वह यह कि सर्वांगीण बनकर चरित्रवान निष्ठावान होकर जाना होगा जो जीवन के सम्पूर्ण परिवेश को ग्रहण करना होगा। जो यह सोचकर कि दूसरा भार ढो देगा और दायित्वपूर्ण कर देगा, वे अकर्मण्य रहते हैं, सिर्फ आलोचना करते हैं, वे कायर है, जीवन से जूझना नहीं जानते या नहीं जूझना चाहते। यह नीति छोड़नी होगी चूँकि यह तामसिक है, सामाजिक आत्महत्या -जैसे घातक तथा त्याज्य है। गांधी अफ्रिका १४ वर्ष की वासंती आयु में बैरिस्टरी करने गये पर जब पग-पग पर दमन, अन्याय, शोषण, की विभीषिका देखी, तो उसमें कूद पड़े। आज जब हमारे चारों ओर वैसी ही विभीषिकाएँ धधक रही हैं, मूल्यहीनता ज्वार-सदृश से लेकर बुद्धिजीवियों, फावड़े चलाने वालों से लेकर कलम रगड़ने वालों तक के लिये कि अक्षुण्ण लौ को अपने में अनुभव कर जन-कल्याण में कूद पड़ें तब यह शरीर धन्य हो गायेगा और मानव सुख-संपदा से भर जायेगा। आज के संदर्भ में यही तकाजा है और यही युग धर्म भी।



बदरी नारायण सिनहा

शैक्षिक योग्यता - एम. ए. अंग्रेजी (पटना)

कार्यरत - इंडियन पुलिस सर्विस में 1952 ई० से

लेखन- मुख्यतः हिन्दी में, अंग्रेजी में भी

जन्म-स्थान - सारामोहनपुर, (दरभंगा)

प्रकाशित: प्राथमिकी (१९६५)

मैना के उलझ गये डैना (१९६६)

यह हिन्दी हिन्दवी है (१९६६)

अब बहु से सब जन हिताय (१९६६)

टटका आदम (१९६६)

आज तक की (१९६७)

प्रकाश्य: माध्यमिकी: हिन्दी

गद्य-रचना, झाँकियाँ, आगंतुका

भर मास संन्यास

MAN THOU CAN

ADAM TO ADAM

परिचय: साहित्यकार बदरी नारायण सिन्हा: विक्रमशिला

साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशिता (१९६६)